हरिवंशराय बच्चन की कविताएं

(बच्चन की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन)

नीड़ का निर्माण

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

वह उठी आँधी कि नभ में
छा गया सहसा अँधेरा,
धूलि धूसर बादलों ने
भूमि को इस भाँति घेरा,

रात-सा दिन हो गया, फिर
रात आई और काली,
लग रहा था अब न होगा
इस निशा का फिर सवेरा,

रात के उत्पात-भय से
भीत जन-जन, भीत कण-कण
किंतु प्राची से उषा की
मोहिनी मुस्कान फिर-फिर!

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

वह चले झोंके कि काँपे
भीम कायावान भूधर,
जड़ समेत उखड़-पुखड़कर
गिर पड़े, टूटे विटप वर,

हाय, तिनकों से विनिर्मित
घोंसलो पर क्या न बीती,
डगमगाए जबकि कंकड़,
ईंट, पत्थर के महल-घर;

बोल आशा के विहंगम,
किस जगह पर तू छिपा था,
जो गगन पर चढ़ उठाता
गर्व से निज तान फिर-फिर!

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

क्रुद्ध नभ के वज्र दंतों
में उषा है मुसकराती,
घोर गर्जनमय गगन के
कंठ में खग पंक्ति गाती;

एक चिड़िया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है,
वह सहज में ही पवन
उंचास को नीचा दिखाती!

नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख
प्रलय की निस्तब्धता से
सृष्टि का नव गान फिर-फिर!

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

पतझड़ की शाम

है यह पतझड़ की शाम, सखे !

नीलम-से पल्लव टूट गए,
मरकत-से साथी छूट गए,
अटके फिर भी दो पीत पात
जीवन-डाली को थाम, सखे !
है यह पतझड़ की शाम, सखे !

लुक-छिप करके गानेवाली,
मानव से शरमानेवाली
कू-कू कर कोयल माँग रही
नूतन घूँघट अविराम, सखे !
है यह पतझड़ की शाम, सखे !

नंगी डालों पर नीड़ सघन,
नीड़ों में है कुछ-कुछ कंपन,
मत देख, नज़र लग जाएगी;
यह चिड़ियों के सुखधाम, सखे !
है यह पतझड़ की शाम, सखे !

आदर्श प्रेम

प्यार किसी को करना लेकिन
कह कर उसे बताना क्या
अपने को अर्पण करना पर
और को अपनाना क्या

गुण का ग्राहक बनना लेकिन
गा कर उसे सुनाना क्या
मन के कल्पित भावों से
औरों को भ्रम में लाना क्या

ले लेना सुगंध सुमनों की
तोड उन्हे मुरझाना क्या
प्रेम हार पहनाना लेकिन
प्रेम पाश फैलाना क्या

त्याग अंक में पले प्रेम शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या
दे कर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या

आज मुझसे बोल, बादल

आज मुझसे बोल, बादल!

तम भरा तू, तम भरा मैं,
ग़म भरा तू, ग़म भरा मैं,
आज तू अपने हृदय से हृदय मेरा तोल, बादल
आज मुझसे बोल, बादल!

आग तुझमें, आग मुझमें,
राग तुझमें, राग मुझमें,
आ मिलें हम आज अपने द्वार उर के खोल, बादल
आज मुझसे बोल, बादल!

भेद यह मत देख दो पल-
क्षार जल मैं, तू मधुर जल,
व्यर्थ मेरे अश्रु, तेरी बूंद है अनमोल, बादल
आज मुझसे बोल, बादल!

आज फिर से

आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

है कहां वह आग जो मुझको जलाए,
है कहां वह ज्वाल पास मेरे आए,

रागिनी, तुम आज दीपक राग गाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

तुम नई आभा नहीं मुझमें भरोगी,
नव विभा में स्नान तुम भी तो करोगी,

आज तुम मुझको जगाकर जगमगाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

मैं तपोमय ज्योती की, पर, प्यास मुझको,
है प्रणय की शक्ति पर विश्वास मुझको,

स्नेह की दो बूंदे भी तो तुम गिराओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

कल तिमिर को भेद मैं आगे बढ़ूंगा,
कल प्रलय की आंधियों से मैं लड़ूंगा,

किन्तु आज मुझको आंचल से बचाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

आज तुम मेरे लिए हो

प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो ।

मैं जगत के ताप से डरता नहीं अब,
मैं समय के शाप से डरता नहीं अब,
आज कुंतल छाँह मुझपर तुम किए हो
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो ।

रात मेरी, रात का श्रृंगार मेरा,
आज आधे विश्व से अभिसार मेरा,
तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिए हो
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

वह सुरा के रूप से मोहे भला क्या,
वह सुधा के स्वाद से जाए छला क्या,
जो तुम्हारे होंठ का मधु-विष पिए हो
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

मृत-सजीवन था तुम्हारा तो परस ही,
पा गया मैं बाहु का बंधन सरस भी,
मैं अमर अब, मत कहो केवल जिए हो
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

आत्मदीप

मुझे न अपने से कुछ प्यार
मिट्टी का हूं छोटा दीपक
ज्योती चाहती दुनिया जब तक मेरी
जल जल कर मैं उसको देने को तैयार

पर यदि मेरी लौ के द्वार
दुनिया की आखों को निद्रित
आखों को करते हों छिद्रित
मुझे बुझा दे, बुझ जाने से मुझे नही इन्कार

केवल इतना ले वह जान
मिट्टी के दीपों के अंतर
मुझमें दिया प्रकृति ने है कर
मैं सजीव दीपक हूं मुझमें भरा हुआ है मान

पहले कर ले खूब विचार
तब वह मुझ पर हाथ बढाए
कहीं न पीछे से पछताए
बुझा मुझे फिर जला न सकेगी दूसरी बार

आज़ादी का गीत

हम ऐसे आज़ाद हमारा झंडा है बादल

चांदी सोने हीरे मोती से सजती गुडिया
इनसे आतंकित करने की घडियां बीत गई
इनसे सज धज कर बैठा करते हैं जो कठपुतले
हमने तोड अभी फेंकी हैं हथकडियां

परम्परा गत पुरखों की जाग्रित की फिर से
उठा शीश पर रक्खा हमने हिम किरीट उज्जवल
हम ऐसे आज़ाद हमारा झंडा है बादल

चांदी सोने हीरे मोती से सजवा छाते
जो अपने सिर धरवाते थे अब शरमाते
फूलकली बरसाने वाली टूट गई दुनिया
वज्रों के वाहन अम्बर में निर्भय घहराते

इन्द्रायुध भी एक बार जो हिम्मत से ओटे
छत्र हमारा निर्मित करते साठ कोटी करतल
हम ऐसे आज़ाद हमारा झंडा है बादल

अंधेरे का दीपक

अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

कल्पना के हाथ से कमनीय जो मंदिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमें वितानो को तना था,
स्वप्न ने अपने करों से था रुचि से संवारा,
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगो से, रसों से जो सना था,
ढह गया वह तो जुटा कर ईंट, पत्थर, कंकडों को,
एक अपनी शांति की कुटिया बनाना कब मना है?
अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

बादलों के अश्रु से धोया गया नभनील नीलम,
का बनाया था गया मधुपात्र मनमोहक, मनोरम,
प्रथम ऊषा की लालिमा सी लाल मदिरा,
थी उसी में चमचमाती नव घनों में चंचला सम,
वह अगर टूटा हाथ की मिला कर दोनो हथेली,
एक निर्मल स्रोत से तृष्णा बुझाना कब मना है?
अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

क्या घडी थी एक भी चिंता नहीं थी पास आई,
कालिमा तो दूर, छाया भी पलक पर थी न छायी,
आंख से मस्ती झपकती, बात से मस्ती टपकती,
थी हंसी ऐसी जिसे सुन बादलों ने शर्म खायी,
वह गई तो ले गई उल्लास के आधार माना,
पर अथिरता की समय पर मुस्कुराना कब मना है?
अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

हाय, वे उन्माद के झोंके कि जिनमें राग जागा,
वैभवों से फेर आंखें गान का वरदान मांगा

एक अंतर से ध्वनित हो दूसरे में जो निरन्तर,
भर दिया अंबर अवनि को मत्तता के गीत गा गा,
अंत उनका हो गया तो मन बहलाने के लिये ही,
ले अधूरी पंक्ति कोई गुनगुनाना कब मना है?
अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

हाय वे साथी की चुम्बक लौह से जो पास आये,
पास क्या आए, कि ह्रदय के बीच ही गोया समाये,
दिन कटे ऐसे कि कोई तार वीणा के मिलाकर,
एक मीठा और प्यारा ज़िन्दगी का गीत गाए,
वे गए तो सोच कर ये लौटने वाले नहीं वे,
खोज मन का मीत कोई लौ लगाना कब मना है?
अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

क्या हवाएं थी कि उजड़ा प्यार का वह आशियाना
कुछ न आया काम तेरा शोर करना, गुल मचाना,
नाश की उन शक्तियों के साथ चलता ज़ोर किसका?
किंतु ऐ निर्माण के प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना,
जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृति के जड़ नियम से
पर किसी उजडे हुए को फिर बसाना कब मना है?
अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

बहुत दिनों पर

मैं तो बहुत दिनों पर चेता ।

श्रम कर ऊबा
श्रम कण डूबा
सागर को खेना था मुझको रहा शिखर को खेता
मैं तो बहुत दिनों पर चेता ।

थी मत मारी
था भ्रम भारी
ऊपर अम्बर गर्दीला था नीचे भंवर लपेटा
मैं तो बहुत दिनों पर चेता ।

यह किसका स्वर
भीतर बाहर
कौन निराशा कुंठित घडियों में मेरी सुधी लेता
मैं तो बहुत दिनों पर चेता ।

मत पछता रे
खेता जा रे
अन्तिम क्षण में चेत जाए जो वह भी सत्वर चेता
मैं तो बहुत दिनों पर चेता ।

चल मरदाने

चल मरदाने, सीना ताने,
हाथ हिलाते, पांव बढ़ाते,
मन मुस्काते, गीत गाते ।

एक हमारा देश, हमारा
वेश, हमारी कौम, हमारी
मंज़िल, हम किससे भयभीत ।

चल मरदाने, सीना ताने,
हाथ हिलाते, पांव बढाते,
मन मुस्काते, गाते गीत ।

हम भारत की अमर जवानी,
सागर की लहरें लासानी,
गंग-जमुन के निर्मल पानी,
हिमगिरि की ऊंची पेशानी
सबके प्रेरक, रक्षक, मीत ।

चल मरदाने, सीना ताने,
हाथ हिलाते, पांव बढाते,
मन मुस्काते, गाते गीत ।

जग के पथ पर जो न रुकेगा,
जो न झुकेगा, जो न मुड़ेगा,
उसका जीवन, उसकी जीत ।

चल मरदाने, सीना ताने,

हाथ हिलाते, पांव बढाते,
मन मुस्काते, गाते गीत ।

दिन जल्दी जल्दी ढलता है

दिन जल्दी जल्दी ढलता है ।

हो जाय न पथ में रात कहीं
मंज़िल भी तो है दूर नहीं -
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी जल्दी चलता है ।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है ।

बच्चे प्रत्याशा में होंगे
नीड़ों से झांक रहे होंगे -
यह ध्यान परों में चिडियों के भरता कितनी चंचलता है ।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है ।

मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊं किसके हित चंचल?
यह प्रश्न करता शिथिल मन को, भरता उर में विव्हलता है ।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है ।

एकांत संगीत

तट पर है तरुवर एकाकी
नौका है सागर में
अंतरिक्ष में खग एकाकी
तारा है अंबर में;

भू पर वन, वारिधि पर बेडे,
नभ में उडु-खग मेला,

नर-नारी से भरे जगत में
कवि का हृदय अकेला ।

ड्राइंगरूम में मरता हुआ गुलाब

गुलाब
तू बदरंग हो गया है
बदरूप हो गया है
झुक गया है
तेरा मुंह चुचुक गया है
तू चुक गया है ।

ऐसा तुझे देख कर
मेरा मन डरता है
फूल इतना डरावना हो कर मरता है!

खुशनुमा गुलदस्ते में
सजे हुए कमरे में
तू जब

ऋतु-राज राजदूत बन आया था
कितना मन भाया था-
रंग-रूप, रस-गंध टटका
क्षण भर को
पंखुरी की परतो में
जैसे हो अमरत्व अटका!
कृत्रिमता देती है कितना बडा झटका!

तू आसमान के नीचे सोता
तो ओस से मुंह धोता
हवा के झोंके से झरता
पंखुरी पंखुरी बिखरता

धरती पर संवरता
प्रकृति में भी है सुंदरता

इस पार उस पार

इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

यह चाँद उदित होकर नभ में कुछ ताप मिटाता जीवन का,
लहरालहरा यह शाखाएँ कुछ शोक भुला देती मन का,
कल मुर्झानेवाली कलियाँ हँसकर कहती हैं मगन रहो,
बुलबुल तरु की फुनगी पर से संदेश सुनाती यौवन का,
तुम देकर मदिरा के प्याले मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का उपचार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

जग में रस की नदियाँ बहती, रसना दो बूंदें पाती है,
जीवन की झिलमिलसी झाँकी नयनों के आगे आती है,
स्वरतालमयी वीणा बजती, मिलती है बस झंकार मुझे,
मेरे सुमनों की गंध कहीं यह वायु उड़ा ले जाती है!
ऐसा सुनता, उस पार, प्रिये, ये साधन भी छिन जाएँगे,
तब मानव की चेतनता का आधार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

प्याला है पर पी पाएँगे, है ज्ञात नहीं इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है, असमर्थबना कितना हमको,
कहने वाले, पर कहते है, हम कर्मों में स्वाधीन सदा,
करने वालों की परवशता है ज्ञात किसे, जितनी हमको?
कह तो सकते हैं, कहकर ही कुछ दिल हलका कर लेते हैं,
उस पार अभागे मानव का अधिकार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

कुछ भी न किया था जब उसका, उसने पथ में काँटे बोये,
वे भार दिए धर कंधों पर, जो रोरोकर हमने ढोए,

महलों के सपनों के भीतर जर्जर खँडहर का सत्य भरा!
उर में एसी हलचल भर दी, दो रात न हम सुख से सोए!
अब तो हम अपने जीवन भर उस क्रूरकठिन को कोस चुके,
उस पार नियति का मानव से व्यवहार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

संसृति के जीवन में, सुभगे! ऐसी भी घड़ियाँ आऐंगी,
जब दिनकर की तमहर किरणे तम के अन्दर छिप जाएँगी,
जब निज प्रियतम का शव रजनी तम की चादर से ढक देगी,
तब रविशशिपोषित यह पृथिवी कितने दिन खैर मनाएगी!
जब इस लंबेचौड़े जग का अस्तित्व न रहने पाएगा,
तब तेरा मेरा नन्हासा संसार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

ऐसा चिर पतझड़ आएगा, कोयल न कुहुक फिर पाएगी,
बुलबुल न अंधेरे में गागा जीवन की ज्योति जगाएगी,
अगणित मृदुनव पल्लव के स्वर 'भरभर' न सुने जाएँगे,
अलिअवली कलिदल पर गुंजन करने के हेतु न आएगी,
जब इतनी रसमय ध्वनियों का अवसान, प्रिय हो जाएगा,
तब शुष्क हमारे कंठों का उद्गार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

सुन काल प्रबल का गुरु गर्जन निर्झरिणी भूलेगी नर्तन,
निर्झर भूलेगा निज 'टलमल', सरिता अपना 'कलकल' गायन,
वह गायकनायक सिन्धु कहीं, चुप हो छिप जाना चाहेगा!
मुँह खोल खड़े रह जाएँगे गंधर्व, अप्सरा, किन्नरगण!
संगीत सजीव हुआ जिनमें, जब मौन वही हो जाएँगे,
तब, प्राण, तुम्हारी तंत्री का, जड़ तार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

उतरे इन आखों के आगे जो हार चमेली ने पहने,
वह छीन रहा देखो माली, सुकुमार लताओं के गहने,
दो दिन में खींची जाएगी ऊषा की साड़ी सिन्दूरी
पट इन्द्रधनुष का सतरंगा पाएगा कितने दिन रहने!
जब मूर्तिमती सत्ताओं की शोभाशुषमा लुट जाएगी,
तब कवि के कल्पित स्वप्नों का श्रृंगार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

दृग देख जहाँ तक पाते हैं, तम का सागर लहराता है,
फिर भी उस पार खड़ा कोई हम सब को खींच बुलाता है!
मैं आज चला तुम आओगी, कल, परसों, सब संगीसाथी,
दुनिया रोतीधोती रहती, जिसको जाना है, जाता है।
मेरा तो होता मन डगडग मग, तट पर ही के हलकोरों से!
जब मैं एकाकी पहुँचूँगा, मँझधार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

जाओ कल्पित साथी मन के!

जब नयनों में सूनापन था,
जर्जर तन था, जर्जर मन था
तब तुम ही अवलख हुए थे मेरे, एकाकी जीवन के!
जाओ कल्पित साथी मन के!

सच, मैनें परमार्थ ना सीखा,
लेकिन मैनें स्वार्थ ना सीखा,
तुम जग के हो रहो न बंदी मेरे भुजबंधन के!
जाओ कल्पित साथी मन के!

जाओ जग में भुज फ़ैलाए,
जिसमें सारा विश्व समाए,
साथी बनो जगत में मुझसे अगणित दुखिया जन के!
जाओ कल्पित साथी मन के!

जीवन की आपाधापी में

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं,
जो किया, कहा, माना उसमें भला बुरा क्या।

जिस दिन मेरी चेतना जगी मैनें देखा,
मैं खड़ा हुआ हूं दुनिया के इस मेले में,
हर एक यहां पर एक भुलाने में भूला,
हर एक लगा है अपनी अपनी दे-ले में,
कुछ देर रहा हक्क-बक्क, भौंचक्का सा,
आ गया कहां, क्या करुं यहां, जाऊं किस जगह?
फ़िर एक तरफ़ से आया ही तो धक्का सा,
मैनें भी बहना शुरु किया उस रेले में,
क्या बाहर की ठेला-पेली ही कुछ कम थी,
जो भीतर भी भावों का उहापोह मचा,
जो किया, उसी को करने की मजबूरी थी,
जो कहा, वही मन के अंदर से उबल चला,
जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं,
जो किया, कहा, माना उसमें भला बुरा क्या।

मेला जितना भडकीला रंग-रंगीला था,
मानस के अंदर उतनी ही कमज़ोरी थी,
जितना ज़्यादा संचित करने की ख्वाहिश थी,
उतनी ही छोटी अपने कर की झोरी थी,
जितनी ही बिरमे रहने की थी अभिलाषा,
उतना ही रेले तेज़ ढकेले जाते थे,
क्रय-विक्रय तो ठंडे दिल से हो सकता है,
यह तो भागा-भागी की छीना-छोरी थी;

अब मुझसे पूछा जाता है क्या बतलाऊं,
क्या मान अकिंचन पथ पर बिखरता आया,
वह कौन रतन अनमोल मिला मुझको
जिस पर अपना मन प्राण निछावर कर आया,
यह थी तकदीरी बात, मुझे गुण-दोष ना दो
जिसको समझा था सोना, वह मिट्टी निकली,
जिसको समझा था आंसू, वह मोती निकला
जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं,
जो किया, कहा, माना उसमें भला बुरा क्या।

मैं कितना ही भूलूं, भटकूं या भरमाऊं,
है एक कहीं मंज़िल जो मुझे बुलाती है,
कितने ही मेरे पांव पड़ें, ऊंचे-नीचे,
प्रतिपल वह मेरे पास चली ही आती है,
मुझ पर विधि का आभार बहुत सी बातों का,
पर मैं कृतज्ञ उसका इस पर सबसे ज़्यादा -
नभ ओले बरसाए, धरती शोले उगले,
अनवरत समय की चक्की चलती जाती है,
मैं जहां खडा था कल, उस थल पर आज नही,
कल इसी जगह पर पाना मुझको मुश्किल है,
ले मापदंड जिसको परिवर्तित कर देतीं,
वे छू कर ही काल-देश की सीमाएं,
जग दे मुझ पर फ़ैसला जैसा उसे भाए,
लेकिन मैं तो बेरोक सफ़र में जीवन के,
इस एक और पहलू से होकर निकल चला,
जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूं,
जो किया, कहा, माना उसमें भला बुरा क्या।

जो बीत गई सो बात गई

जीवन में एक सितारा था
माना वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया तो डूब गया
अंबर के आंगन को देखो
कितने इसके तारे टूटे
कितनी इसके प्यारे छूटे
जो छूट गये फ़िर कहां मिले
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अंबर शोक मनाता है
जो बीत गई सो बात गई

जीवन में वह था एक कुसुम
थे उस पर नित्य निछावर तुम
वह सूख गया तो सूख गया
मधुबन की छाती को देखो
सूखी कितनी इसकी कलियां
मुरझाईं कितनी वल्लरियां
जो मुरझाईं फ़िर कहां खिली
पर बोलो सूखे फ़ूलों पर
कब मधुबन शोर मचाता है
जो बीत गई सो बात गई

जीवन में मधु का प्याला था
तुमने तन मन दे डाला था
वह टूट गया तो टूट गया
मदिरालय का आंगन देखो
कितने प्याले हिल जाते हैं
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं

जो गिरते हैं कब उठते हैं
पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है
जो बीत गई सो बात गई

मृदु मिट्टी के बने हुए हैं
मधु घट फ़ूटा ही करते हैं
लघु जीवन ले कर आए हैं
प्याले टूटा ही करते हैं
फ़िर भी मदिरालय के अन्दर
मधु के घट हैं मधु प्याले हैं
जो मादकता के मारे हैं
वे मधु लूटा ही करते हैं
वह कच्चा पीने वाला है
जिसकी ममता घट प्यालों पर
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है चिल्लाता है
जो बीत गई सो बात गई

जुगनू

अंधेरी रात में दिया जलाए कौन बैठा है?

उठी ऐसी घटा नभ में
छिपे सब चांद औ' तारे
उठा तूफ़ान वह नभ में
गए बुझ दीप भी सारे
मगर इस रात में भी लौ लगाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दिया जलाए कौन बैठा है?

गगन में गर्व से उठ-उठ
गगन में गर्व से घिर-घिर
गरज कहती घटाएं हैं
नहीं होगा उजाला फ़िर
मगर चिरज्योती में निष्ठा जमाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दिया जलाए कौन बैठा है?

तिमिर के राज का ऐसा
कठिन आतंक छाया है
उठा जो शीश सकते थे
उन्होनें सिर झुकाया है
मगर विद्रोह की ज्वाला जलाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दिया जलाए कौन बैठा है?

प्रलय का सब समां बांधे
प्रलय की रात है छाई
विनाशक शक्तियों की इस
तिमिर के बीच बन आई
मगर निर्माण में आशा दृढ़ाए कौन बैठा है?

अंधेरी रात में दिया जलाए कौन बैठा है?

प्रभंजन, मेघ, दामिनी ने
क्या न तोडा, क्या न फ़ोडा
धरा के और नभ के बीच
कुछ साबित नहीं छोडा
मगर विश्वास को अपने बचाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दिया जलाए कौन बैठा है?

प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई
मगर पड़ प्रेम बंधन में
समझ किसने नहीं खोई
किसी के पथ में पलकें बिछाए कौन बैठा है?
अंधेरी रात में दिया जलाए कौन बैठा है?

कहते हैं तारे गाते हैं

सन्नाटा वसुधा पर छाया,
नभ में हमनें कान लगाया,
फ़िर भी अगणित कंठो का यह राग नहीं हम सुन पाते हैं
कहते हैं तारे गाते हैं

स्वर्ग सुना करता यह गाना,
पृथ्वी ने तो बस यह जाना,
अगणित ओस-कणों में तारों के नीरव आंसू आते हैं
कहते हैं तारे गाते हैं

ऊपर देव तले मानवगण,
नभ में दोनों गायन-रोदन,
राग सदा ऊपर को उठता, आंसू नीचे झर जाते हैं
कहते हैं तारे गाते हैं

कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं

कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं?
क्या तुम लाई हो चितवन में,
क्या तुम लाई हो चुंबन में,
अपनी कर में क्या तुम लाई,
क्या तुम लाई अपने मन में,
क्या तुम नूतन लाई जो मैं
फ़िर से बंधन झेलूं?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं?

अश्रु पुराने, आह पुरानी,
युग बाहों की चाह पुरानी,
उथले मन की थाह पुरानी,
वही प्रणय की राह पुरानी,
अर्ध्य प्रणय का कैसे अपनी
अंतर्ज्वाला में लूं?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं?

खेल चुका मिट्टी के घर से,
खेल चुका मैं सिंधु लहर से,
नभ के सूनेपन से खेला,
खेला झंझा के झर-झर से;
तुममें आग नहीं तब क्या,
संग तुम्हारे खेलूं?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं?

कवि की वासना

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

१

सृष्टि के प्रारंभ में
मैने उषा के गाल चूमे,
बाल रवि के भाग्य वाले
दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम संध्या के अरुण दृग
चूम कर मैने सुलाए,
तारिका-कलि से सुसज्जित
नव निशा के बाल चूमे,
वायु के रसमय अधर
पहले सके छू होठ मेरे
मृत्तिका की पुतलियो से
आज क्या अभिसार मेरा?
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

२

विगत-बाल्य वसुंधरा के
उच्च तुंग-उरोज उभरे,
तरु उगे हरिताभ पट धर
काम के धव्ज मत्त फहरे,
चपल उच्छृंखल करों ने
जो किया उत्पात उस दिन,

है हथेली पर लिखा वह,
पढ़ भले ही विश्व हहरे;
प्यास वारिधि से बुझाकर
भी रहा अतृप्त हूँ मैं,
कामिनी के कंच-कलश से
आज कैसा प्यार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

३

इन्द्रधनु पर शीश धरकर
बादलों की सेज सुखकर
सो चुका हूँ नींद भर मैं
चंचला को बाहों में भर,
दीप रवि-शशि-तारकों ने
बाहरी कुछ केलि देखी,
देख, पर, पाया न कोई
स्वप्न वे सुकुमार सुंदर
जो पलक पर कर निछावर
थी गई मधु यामिनी वह;
यह समाधि बनी हुई है
यह न शयनागार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

४

आज मिट्टी से घिरा हूँ
पर उमंगें हैं पुरानी,

सोमरस जो पी चुका है
आज उसके हाथ पानी,
होठ प्यालों पर टिके तो
थे विवश इसके लिये वे,
प्यास का व्रत धार बैठा;
आज है मन, किन्तु मानी;
मैं नहीं हूँ देह-धर्मों से
बिधा, जग, जान ले तू,
तन विकृत हो जाये लेकिन
मन सदा अविकार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

५

निष्परिश्रम छोड़ जिनको
मोह लेता विशन भर को,
मानवों को, सुर-असुर को,
वृद्ध ब्रह्मा, विष्णु, हर को,
भंग कर देता तपस्या
सिद्ध, ऋषि, मुनि सत्तमों की
वे सुमन के बाण मैंने,
ही दिये थे पंचशर को;
शक्ति रख कुछ पास अपने
ही दिया यह दान मैंने,
जीत पाएगा इन्हीं से
आज क्या मन मार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

६

प्राण प्राणों से सकें मिल
किस तरह, दीवार है तन,
काल है घड़ियां न गिनता,
बेड़ियों का शब्द झन-झन
वेद-लोकाचार प्रहरी
ताकते हर चाल मेरी,
बद्ध इस वातावरण में
क्या करे अभिलाष यौवन!
अल्पतम इच्छा यहां
मेरी बनी बंदी पड़ी है,
विश्व क्रीडास्थल नहीं रे
विश्व कारागार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

७

थी तृषा जब शीत जल की
खा लिये अंगार मैंने,
चीथड़ों से उस दिवस था
कर लिया श्रृंगार मैंने
राजसी पट पहनने को
जब हुई इच्छा प्रबल थी,
चाह-संचय में लुटाया
था भरा भंडार मैंने;
वासना जब तीव्रतम थी
बन गया था संयमी मैं,
है रही मेरी क्षुधा ही
सर्वदा आहार मेरा!
कह रहा जग वासनामय

हो रहा उद्गार मेरा!

८

कल छिड़ी, होगी ख़तम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूं मैं, जो रहेगी
विश्व में मेरी निशानी?
क्या किया मैंने नही जो
कर चुका संसार अबतक?
वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी?
मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा!
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

किस कर में यह वीणा धर दूँ?

देवों ने था जिसे बनाया,
देवों ने था जिसे बजाया,
मानव के हाथों में कैसे इसको आज समर्पित कर दूँ?
किस कर में यह वीणा धर दूँ?

इसने स्वर्ग रिझाना सीखा,
स्वर्गिक तान सुनाना सीखा,
जगती को खुश करनेवाले स्वर से कैसे इसको भर दूँ?
किस कर में यह वीणा धर दूँ?

क्यों बाकी अभिलाषा मन में,
विकृत हो यह फिर जीवन में?
क्यों न हृदय निर्मम हो कहता अंगारे अब धर इस पर दूँ?
किस कर में यह वीणा धर दूँ?

कोई गाता मैं सो जाता

संस्रिति के विस्त्रित सागर मे
सपनों कि नौका के अंदर
दुख सुख कि लहरों मे उठ गिर
बहता जाता, मैं सो जाता ।

आँखों मे भरकर प्यार अमर
आशीष हथेली मे भरकर
कोई मेरा सिर गोदी मे रख
सहलाता, मैं सो जाता ।

मेरे जीवन का खाराजल
मेरे जीवन का हालाहल
कोई अपने स्वर मे मधुमय कर
बरसाता मैं सो जाता ।

कोई गाता मैं सो जाता
मैं सो जाता
मैं सो जाता

कोई पार नदी के गाता!

भंग निशा की नीरवता कर,
इस देहाती गाने का स्वर,
ककडी के खेतों से उठ, आता जमुना पर लहराता!
कोई पार नदी के गाता!

होंगे भाई-बंधु निकट ही,
कभी सोचते होंगे यह भी,
इस तट पर भी बैठा कोई, उसकी तानों को सुन पाता!
कोई पार नदी के गाता!

आज ना जाने क्यों होता मन,
सुन कर यह एकाकी गायन,
सदा इसे मैं सुनता रहता, सदा इसे यह गाता जाता!
कोई पार नदी के गाता!

क्या भूलूं, क्या याद करूं मैं!

अगणित उन्मादों के क्षण हैं,
अगणित अवसादों के क्षण हैं,
रजनी की सूनी की घडियों को किन-किन से आबाद करूं मैं!
क्या भूलूं, क्या याद करूं मैं!

याद सुखों की आसूं लाती,
दुख की, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूं जब अपने से, अपने दिन बर्बाद करूं मैं!
क्या भूलूं, क्या याद करूं मैं!

दोनो करके पछताता हूं,
सोच नहीं, पर मैं पाता हूं,
सुधियों के बंधन से कैसे अपने को आबाद करूं मैं!
क्या भूलूं, क्या याद करूं मैं!

क्या है मेरी बारी में

क्या है मेरी बारी में।
जिसे सींचना था मधुजल से
सींचा खारे पानी से,
नहीं उपजता कुछ भी ऐसी
विधि से जीवन-क्यारी में।
क्या है मेरी बारी में।

आंसू-जल से सींच-सींचकर
बेलि विवश हो बोता हूं,
स्रष्टा का क्या अर्थ छिपा है
मेरी इस लाचारी में।
क्या है मेरी बारी में।

टूट पड़े मधुऋतु मधुवन में
कल ही तो क्या मेरा है,
जीवन बीत गया सब मेरा
जीने की तैयारी में
क्या है मेरी बारी में

क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी

क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी?
क्या करूं?

मैं दुखी जब-जब हुआ
संवेदना तुमने दिखाई,
मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा,
रीति दोनो ने निभाई,
किन्तु इस आभार का अब
हो उठा है बोझ भारी;
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी?
क्या करूं?

एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा?
उस नयन से बह सकी कब
इस नयन की अश्रु-धारा?
सत्य को मूंदे रहेगी
शब्द की कब तक पिटारी?
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी?
क्या करूं?

कौन है जो दूसरों को
दु:ख अपना दे सकेगा?
कौन है जो दूसरे से
दु:ख उसका ले सकेगा?
क्यों हमारे बीच धोखे
का रहे व्यापार जारी?
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी?

क्या करूं?

क्यों न हम लें मान, हम हैं
चल रहे ऐसी डगर पर,
हर पथिक जिस पर अकेला,
दुख नहीं बंटते परस्पर,
दूसरों की वेदना में
वेदना जो है दिखाता,
वेदना से मुक्ति का निज
हर्ष केवल वह छिपाता;
तुम दुखी हो तो सुखी मैं
विश्व का अभिशाप भारी!
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी?
क्या करूं?

लहर सागर का नहीं श्रृंगार

लहर सागर का नहीं श्रृंगार,
उसकी विकलता है;
अनिल अम्बर का नहीं खिलवार
उसकी विकलता है;
विविध रूपों में हुआ साकार,
रंगो में सुरंजित,
मृत्तिका का यह नहीं संसार,
उसकी विकलता है।

गन्ध कलीका का नहीं उदगार,
उसकी विकलता है;
फूल मधुवन का नहीं गलहार,
उसकी विकलता है;
कोकिला का कौन सा व्यवहार,
ऋतुपति को न भाया?
कूक कोयल की नहीं मनुहार,
उसकी विकलता है।

गान गायक का नहीं व्यापार,
उसकी विकलता है;
राग वीणा की नहीं झंकार,
उसकी विकलता है;
भावनाओं का मधुर आधार
सांसो से विनिर्मित,
गीत कवि-उर का नहीं उपहार,
उसकी विकलता है।

लो दिन बीता, लो रात गई

सूरज ढल कर पच्छिम पहुंचा,
डूबा, संध्या आई, छाई,
सौ संध्या सी वह संध्या थी,
क्यों उठते-उठते सोचा था
दिन में होगी कुछ बात नई
लो दिन बीता, लो रात गई

धीमे-धीमे तारे निकले,
धीरे-धीरे नभ में फ़ैले,
सौ रजनी सी वह रजनी थी,
क्यों संध्या को यह सोचा था,
निशि में होगी कुछ बात नई,
लो दिन बीता, लो रात गई

चिडियाँ चहकी, कलियाँ महकी,
पूरब से फ़िर सूरज निकला,
जैसे होती थी, सुबह हुई,
क्यों सोते-सोते सोचा था,
होगी प्रातः कुछ बात नई,
लो दिन बीता, लो रात गई

मेरा संबल

मैं जीवन की हर हल-चल में
कुछ पल सुखमय
अमरण अक्षय
चुन लेता हूं

मैं जग के हर कोलाहल में
कुछ स्वर मधुमय
उन्मुक्त अभय
सुन लेता हूं

हर काल कठिन के बंधन से
ले तार तरल
कुछ मुद मंगल
मैं सुधि पट पर
बुन लेता हूं

मुझसे चांद कहा करता है

चोट कड़ी है काल प्रबल की,
उसकी मुस्कानों से हल्की,
राजमहल कितनी सपनों का पल में नित्य ढहा करता है,
मुझसे चांद कहा करता है

तू तो है लघु मानव केवल,
पृथ्वी तल का वासी निर्बल,
तारों का असमर्थ अश्रु भी नभ में नित्य बहा करता है,
मुझसे चांद कहा करता है

तू अपने दुख में चिल्लाता,
आंखो देखी बात बताता,
तेरे दुख से कहीं कठिन दुख यह जग मौन सहा करता है
मुझसे चांद कहा करता है

नव वर्ष

वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन का उत्कर्ष नव।

नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।

नवल चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।

गीत नवल,
प्रीत नवल,
जीवन की रीति नवल,
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल!

यह पपीहे की रटन है

यह पपीहे की रटन है!

बदलों की घिर घटाएं,
भूमि की लेती बलाएं,
खोल दिल देती दुआएं -देख किस उर में जलन है?
यह पपीहे की रटन है!

जो बहा दे, नीर आया,
आग का फिर तीर आया,
वज्र भी बेपीर आया -कब रुका इसका वचन है?
यह पपीहे की रटन है!

यह न पानी से बुझेगी,
यह न पत्थर से दबेगी,
यह न शोलों से डरेगी, यह वियोगी की लगन है!
यह पपीहे की रटन है!

पथ की पहचान

पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले

पुस्तकों में है नहीं
छापी गई इसकी कहानी
हाल इसका ग्यात होता
है ना औरों की ज़बानी

अनगिनत राही गये
इस राह से उनका पता क्या
पर गये कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी

यह निशानी मूक हो कर
भी बहुत कुछ बोलती है
खोल इसका अर्थ पंथी
पंथ का अनुमान कर ले

पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले

यह बुरा है या कि अच्छा
व्यर्थ दिन इस पर बिताना
अब असंभव छोड यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना

तू इसे अच्छा समझ
यात्रा सरल इससे बनेगी
सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना

हर सफ़ल पंथी यही
विश्वास ले इस पर बढ़ा है
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान कर ले

पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले

है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरी, गह्वर मिलेंगे
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग बन सुंदर मिलेंगे

किस जगह यात्रा खत्म
हो जाएगी यह भी अनिश्चित
है अनिश्चित कब सुमन कब
कंटकों के शर मिलेंगे

कौन सहसा छूट जाएंगें
मिलेंगे कौन सहसा
आ पड़े कुछ भी रुकेगा
तु न ऐसी आन कर ले

पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले

साथी साथ ना देगा दु:ख भी!

काल छीनने दु:ख आता है
जब दु:ख भी प्रिय हो जाता है
नहीं चाहते जब हम दु:ख के बदले चिर सुख भी!
साथी साथ ना देगा दु:ख भी!

जब परवशता का कर अनुभव
अश्रु बहाना पड़ता नीरव
उसी विवशता से दुनिया में होना पडता है हंसमुख भी!
साथी साथ ना देगा दु:ख भी!

इसे कहूं कर्तव्य-सुघरता
या विरक्ति, या केवल जड़ता
भिन्न सुखों से, भिन्न दुखों से, होता है जीवन का रुख भी!
साथी साथ ना देगा दु:ख भी!

साथी, सब कुछ सहना होगा

मानव पर जगती का शासन,
जगती पर संसृति का बंधन,
संसृति को भी और किसी के प्रतिबंधो में रहना होगा!
साथी, सब कुछ सहना होगा!

हम क्या हैं जगती के सर में!
जगती क्या, संसृति सागर में!
कि प्रबल धारा में हमको लघु तिनके-सा बहना होगा!
साथी, सब कुछ सहना होगा!

आओ, अपनी लघुता जानें,
अपनी निर्बलता पहचानें,
जैसे जग रहता आया है उसी तरह से रहना होगा!
साथी, सब कुछ सहना होगा!

तब रोक न पाया मैं आंसू

जिसके पीछे पागल होकर
मैं दौड़ा अपने जीवन-भर,
जब मृगजल में परिवर्तित हो मुझ पर मेरा अरमान हंसा!
तब रोक न पाया मैं आंसू!

जिसमें अपने प्राणों को भर
कर देना चाहा अजर-अमर,
जब विस्मृति के पीछे छिपकर मुझ पर वह मेरा गान हंसा!
तब रोक न पाया मैं आंसू!

मेरे पूजन-आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण में,
जब मेरी कमज़ोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हंसा!
तब रोक न पाया मैं आंसू!

त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन

त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन!

जब रजनी के सूने क्षण में,
तन-मन के एकाकीपन में
कवि अपनी विव्हल वाणी से अपना व्याकुल मन बहलाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन!

जब उर की पीड़ा से रोकर,
फिर कुछ सोच समझ चुप होकर
विरही अपने ही हाथों से अपने आंसू पोंछ हटाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन!

पंथी चलते-चलते थक कर,
बैठ किसी पथ के पत्थर पर
जब अपने ही थकित करों से अपना विथकित पांव दबाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन!

तुम गा दो

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

मेरे वर्ण-वर्ण विश्रंखल,
चरण-चरण भरमाए,
गूंज-गूंज कर मिटने वाले
मैनें गीत बनाये;

कूक हो गई हूक गगन की
कोकिल के कंठो पर,

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

****

जब-जब जग ने कर फैलाए,
मैनें कोष लुटाया,
रंक हुआ मैं निज निधि खोकर
जगती ने क्या पाया!

भेंट न जिसमें मैं कुछ खोऊं,
पर तुम सब कुछ पाओ,

तुम ले लो, मेरा दान अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

****

सुन्दर और असुन्दर जग में
मैनें क्या न सराहा,
इतनी ममतामय दुनिया में
मैं केवल अनचाहा;

देखूं अब किसकी रुकती है
आ मुझ पर अभिलाषा,

तुम रख लो, मेरा मान अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

****

दुख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी कुछ रहता,
जीवन की अंतिम घडियों में
भी तुमसे यह कहता

सुख की सांस पर होता
है अमरत्व निछावर,

तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

****

तुम तूफ़ान समझ पाओगे

तुम तूफ़ान समझ पाओगे?

गीले बादल, पीले रजकण,
सूखे पत्ते, रूखे तृण घन
लेकर चलता करता 'हरर' - इसका गान समझ पाओगे?
तुम तूफ़ान समझ पाओगे?

गन्ध-भरा यह मंद पवन था,
लहराता इससे मधुवन था,
सहसा इसका टूट गया जो स्वप्न महान, समझ पाओगे?
तुम तूफ़ान समझ पाओगे?

तोड़-मरोड़ विटप-लतिकाएं,
नोच-खसोट कुसुम कलिकाएं,
जाता है अज्ञात दिशा को! हटो विहंगम, उड जाओगे!
तुम तूफ़ान समझ पाओगे?

यात्रा और यात्री

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर!

चल रहा है तारकों का
दल गगन में गीत गाता,
चल रहा आकाश भी है
शून्य में भ्रमता-भ्रमाता,
पाँव के नीचे पड़ी
अचला नहीं, यह चंचला है,
एक कण भी, एक क्षण भी
एक थल पर टिक न पाता,
शक्तियाँ गति की तुझे
सब ओर से घेरे हुए है;
स्थान से अपने तुझे
टलना पड़ेगा ही, मुसाफिर!
साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर!

थे जहाँ पर गर्त पैरों
को ज़माना ही पड़ा था,
पत्थरों से पाँव के
छाले छिलाना ही पड़ा था,
घास मखमल-सी जहाँ थी
मन गया था लोट सहसा,
थी घनी छाया जहाँ पर
तन जुड़ाना ही पड़ा था,
पग परीक्षा, पग प्रलोभन
ज़ोर-कमज़ोरी भरा तू

इस तरफ डटना उधर
ढलना पड़ेगा ही, मुसाफिर;
साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर!

शूल कुछ ऐसे, पगो में
चेतना की स्फूर्ति भरते,
तेज़ चलने को विवश
करते, हमेशा जबकि गड़ते,
शुक्रिया उनका कि वे
पथ को रहे प्रेरक बनाए,
किन्तु कुछ ऐसे कि रुकने
के लिए मजबूर करते,
और जो उत्साह का
देते कलेजा चीर, ऐसे
कंटकों का दल तुझे
दलना पड़ेगा ही, मुसाफिर;
साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर!

सूर्य ने हँसना भुलाया,
चंद्रमा ने मुस्कुराना,
और भूली यामिनी भी
तारिकाओं को जगाना,
एक झोंके ने बुझाया
हाथ का भी दीप लेकिन
मत बना इसको पथिक तू
बैठ जाने का बहाना,
एक कोने में हृदय के
आग तेरे जग रही है,
देखने को मग तुझे

जलना पड़ेगा ही, मुसाफिर;
साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर!

वह कठिन पथ और कब
उसकी मुसीबत भूलती है,
साँस उसकी याद करके
भी अभी तक फूलती है;
यह मनुज की वीरता है
या कि उसकी बेहयाई,
साथ ही आशा सुखों का
स्वप्न लेकर झूलती है
सत्य सुधियाँ, झूठ शायद
स्वप्न, पर चलना अगर है,
झूठ से सच को तुझे
छलना पड़ेगा ही, मुसाफिर;
साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर!

युग की उदासी

अकारण ही मैं नहीं उदास

अपने में ही सिकुड़ सिमट कर
जी लेने का बीता अवसर
जब अपना सुख दुख था, अपना ही उछाह उच्छवास
अकारण ही मैं नहीं उदास

अब अपनी सीमा में बंध कर
देश काल से बचना दुष्कर
यह संभव था कभी नही, पर संभव था विश्वास
अकारण ही मैं नहीं उदास

एक सुनहरे चित्रपटल पर
दाग लगाने में है तत्पर
अपने उच्छृंखल हाथों से, उत्पाती इतिहास
अकारण ही मैं नहीं उदास

प्रतीक्षा

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी प्रिय तुम आते तब क्या होता?

मौन रात इस भांति कि जैसे, कोई गत वीणा पर बज कर
अभी अभी सोयी खोयी सी, सपनो में तारों पर सिर धर
और दिशाओं से प्रतिध्वनियां जाग्रत सुधियों सी आती हैं
कान तुम्हारी तान कहीं से यदि सुन पाते, तब क्या होता?

तुमने कब दी बात रात के सूने में तुम आने वाले
पर ऎसे ही वक्त प्राण मन, मेरे हो उठते मतवाले
सांसे घूम-घूम फिर फिर से असमंजस के क्षण गिनती हैं
मिलने की घडियां तुम निश्चित, यदि कर जाते तब क्या होता?

उत्सुकता की अकुलाहट में मैनें पलक पांवडे डाले
अम्बर तो मशहूर कि सब दिन रहता अपने होश सम्हाले
तारों की महफ़िल ने अपनी आंख बिछा दी किस आशा से
मेरी मौन कुटी को आते, तुम दिख जाते तब क्या होता?

बैठ कल्पना करता हूं, पगचाप तुम्हारी मग से आती
रग-रग में चेतनता घुलकर, आंसू के कण सी झर जाती
नमक डली सा घुल अपनापन, सागर में घुलमिल सा जाता
अपनी बांहो में भर कर प्रिय, कंठ लगाते तब क्या होता?

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी प्रिय तुम आते तब क्या होता?

राष्ट्रिय ध्वज

नागाधिराज श्रृंग पर खडी हुई,
समुद्र की तरंग पर अडी हुई,
स्वदेश में जगह-जगह गडी हुई,
अटल ध्वजा हरी,सफेद केसरी!

न साम-दाम के समक्ष यह रुकी,
न द्वन्द-भेद के समक्ष यह झुकी,
सगर्व आस शत्रु-शीश पर ठुकी,
निडर ध्वजा हरी, सफेद केसरी!

चलो उसे सलाम आज सब करें,
चलो उसे प्रणाम आज सब करें,
अजर सदा इसे लिये हुये जियें,
अमर सदा इसे लिये हुये मरें,
अजय ध्वजा हरी, सफेद केसरी!

साजन आए, सावन आया

अब दिन बदले, घड़ियाँ बदलीं,
साजन आए, सावन आया ।

धरती की जलती साँसों ने
मेरी साँसों में ताप भरा,
सरसी की छाती दरकी तो
कर घाव गई मुझपर गहरा,

है नियति-प्रकृति की ऋतुओं में
संबंध कहीं कुछ अनजाना,
अब दिन बदले, घड़ियाँ बदलीं,
साजन आए, सावन आया ।

तुफान उठा जब अंबर में
अंतर किसने झकझोर दिया,
मन के सौ बंद कपाटों को
क्षण भर के अंदर खोल दिया,

झोंका जब आया मधुवन में
प्रिय का संदेश लिए आया-
ऐसी निकली ही धूप नहीं
जो साथ नहीं लाई छाया ।
अब दिन बदले, घड़ियाँ बदलीं,
साजन आए, सावन आया ।

घन के आँगन से बिजली ने
जब नयनों से संकेत किया,

मेरी बे-होश-हवास पड़ी
आशा ने फिर से चेत किया,

मुरझाती लतिका पर कोई
जैसे पानी के छींटे दे,
औ' फिर जीवन की साँसे ले
उसकी म्रियमाण-जली काया ।
अब दिन बदले, घड़ियाँ बदलीं,
साजन आए, सावन आया ।

रोमांच हुआ जब अवनी का
रोमांचित मेरे अंग हुए,
जैसे जादू की लकड़ी से
कोई दोनों को संग छुए,

सिंचित-सा कंठ पपीहे का
कोयल की बोली भीगी-सी,
रस-डूबा, स्वर में उतराया
यह गीत नया मैंने गाया ।
अब दिन बदले, घड़ियाँ बदलीं,
साजन आए, सावन आया ।

अब वे मेरे गान कहाँ हैं

टूट गई मरकत की प्याली,
लुप्त हुई मदिरा की लाली,
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले अब सामान कहाँ हैं!
अब वे मेरे गान कहाँ हैं!

जगती के नीरस मरुथल पर,
हँसता था मैं जिनके बल पर,
चिर वसंत-सेवित सपनों के मेरे वे उद्यान कहा हैं!
अब वे मेरे गान कहाँ हैं!

किस पर अपना प्यार चढाऊँ?
यौवन का उद्गार चढाऊँ?
मेरी पूजा को सह लेने वाले वे पाषाण कहाँ है!
अब वे मेरे गान कहाँ हैं!

मैं कल रात नहीं रोया था

दुख सब जीवन के विस्मृत कर,
तेरे वक्षस्थल पर सिर धर,
तेरी गोदी में चिड़िया के बच्चे-सा छिपकर सोया था!
मैं कल रात नहीं रोया था!

प्यार-भरे उपवन में घूमा,
फल खाए, फूलों को चूमा,
कल दुर्दिन का भार न अपने पंखो पर मैं ने ढोया था!
मैं कल रात नहीं रोया था!

आँसू के दाने बरसाकर
किन आँखो ने तेरे उर पर
ऐसे सपनों के मधुवन का मधुमय बीज, बता, बोया था!
मैं कल रात नहीं रोया था!

स्वप्न था मेरा भयंकर

रात का-सा था अंधेरा,
बदलों का था न डेरा,
किन्तु फिर भी चन्द्र-तारों से हुआ था हीन अम्बर!
स्वप्न था मेरा भयंकर!

क्षीण सरिता बह रही थी,
कूल से यह कह रही थी-
शीघ्र ही मैं सूखने को, भेंट ले मुझको हृदय भर!
स्वप्न था मेरा भयंकर!

धार से कुछ फासले पर
सित कफन की ओढ़ चादर
एक मुर्दा गा रहा था बैठकर जलती चिता पर!
स्वप्न था मेरा भयंकर!

रात आधी खींच कर मेरी हथेली

रात आधी खींच कर मेरी हथेली
एक उंगली से लिखा था प्यार तुमने।

फ़ासला था कुछ हमारे बिस्तरों में
और चारों ओर दुनिया सो रही थी।
तारिकाऐं ही गगन की जानती हैं
जो दशा दिल की तुम्हारे हो रही थी।
मैं तुम्हारे पास होकर दूर तुमसे
अधजगा सा और अधसोया हुआ सा।
रात आधी खींच कर मेरी हथेली
एक उंगली से लिखा था प्यार तुमने।

एक बिजली छू गई सहसा जगा मैं
कृष्णपक्षी चाँद निकला था गगन में।
इस तरह करवट पड़ी थी तुम कि आँसू
बह रहे थे इस नयन से उस नयन में।
मैं लगा दूँ आग इस संसार में
है प्यार जिसमें इस तरह असमर्थ कातर।
जानती हो उस समय क्या कर गुज़रने
के लिए था कर दिया तैयार तुमने!
रात आधी खींच कर मेरी हथेली
एक उंगली से लिखा था प्यार तुमने।

प्रात ही की ओर को है रात चलती
औ उजाले में अंधेरा डूब जाता।
मंच ही पूरा बदलता कौन ऐसी
खूबियों के साथ परदे को उठाता।
एक चेहरा सा लगा तुमने लिया था
और मैंने था उतारा एक चेहरा।
वो निशा का स्वप्न मेरा था कि अपने

पर ग़ज़ब का था किया अधिकार तुमने।
रात आधी खींच कर मेरी हथेली
एक उंगली से लिखा था प्यार तुमने।

और उतने फ़ासले पर आज तक
सौ यत्न करके भी न आये फिर कभी हम।
फिर न आया वक्त वैसा
फिर न मौका उस तरह का
फिर न लौटा चाँद निर्मम।
और अपनी वेदना मैं क्या बताऊँ।
क्या नहीं ये पंक्तियाँ खुद बोलती हैं?
बुझ नहीं पाया अभी तक उस समय जो
रख दिया था हाथ पर अंगार तुमने।
रात आधी खींच कर मेरी हथेली
एक उंगली से लिखा था प्यार तुमने।

साथी, साँझ लगी अब होने!

फैलाया था जिन्हें गगन में,

विस्तृत वसुधा के कण-कण में,

उन किरणों के अस्ताचल पर पहुँच लगा है सूर्य सँजोने!

साथी, साँझ लगी अब होने!

खेल रही थी धूलि कणों में,

लोट-लिपट गृह-तरु-चरणों में,

वह छाया, देखो जाती है प्राची में अपने को खोने!

साथी, साँझ लगी अब होने!

मिट्टी से था जिन्हें बनाया,

फूलों से था जिन्हें सजाया,

खेल-घरौंदे छोड़ पथों पर चले गए हैं बच्चे सोने!

साथी, साँझ लगी अब होने!

था तुम्हें मैंने रुलाया

हा, तुम्हारी मृदुल इच्छा!
हाय, मेरी कटु अनिच्छा!
था बहुत माँगा ना तुमने किन्तु वह भी दे ना पाया!
था तुम्हें मैंने रुलाया!

स्नेह का वह कण तरल था,
मधु न था, न सुधा-गरल था,
एक क्षण को भी, सरलते, क्यों समझ तुमको न पाया!
था तुम्हें मैंने रुलाया!

बूँद कल की आज सागर,
सोचता हूँ बैठ तट पर -
क्यों अभी तक डूब इसमें कर न अपना अंत पाया!
था तुम्हें मैंने रुलाया!

-- हरिवंशराय बच्चन के कविता संग्रह "निशा निमन्त्रण" से

स्वप्न भी छल

स्वप्न भी छल, जागरण भी

भूत केवल जल्पना है
औ' भविष्यित कल्पना है
वर्तमान लकीर भ्रम की, और है चौथी शरण भी
स्वप्न भी छल, जागरण भी

मनुज के अधिकार कैसे,
हम यहाँ लाचार ऐसे,
कर नहीं इनकार सकते, कर नहीं सकते वरण भी
स्वप्न भी छल, जागरण भी

जानता यह भी नहीं मन,
कौन मेरी थाम गर्दन,
है विवश करता कि कह दूँ, व्यर्थ जीवन भी, मरण भी
स्वप्न भी छल, जागरण भी

-- हरिवंशराय बच्चन के कविता संग्रह "निशा निमन्त्रण" से

कोशिश करने वालों की

लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है।
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है।
आख़िर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

डुबकियां सिंधु में गोताखोर लगाता है,
जा जा कर खाली हाथ लौटकर आता है।
मिलते नहीं सहज ही मोती गहरे पानी में,
बढ़ता दुगना उत्साह इसी हैरानी में।
मुट्ठी उसकी खाली हर बार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

असफलता एक चुनौती है, इसे स्वीकार करो,
क्या कमी रह गई, देखो और सुधार करो।
जब तक न सफल हो, नींद चैन को त्यागो तुम,
संघर्ष का मैदान छोड़ कर मत भागो तुम।
कुछ किये बिना ही जय जय कार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

क्षण भर को क्यों प्यार किया था?

अर्द्ध रात्रि में सहसा उठकर,
पलक संपुटों में मदिरा भर,
तुमने क्यों मेरे चरणों में अपना तन-मन वार दिया था?
क्षण भर को क्यों प्यार किया था?

'यह अधिकार कहाँ से लाया!'
और न कुछ मैं कहने पाया -
मेरे अधरों पर निज अधरों का तुमने रख भार दिया था!
क्षण भर को क्यों प्यार किया था?

वह क्षण अमर हुआ जीवन में,
आज राग जो उठता मन में -
यह प्रतिध्वनि उसकी जो उर में तुमने भर उद्गार दिया था!
क्षण भर को क्यों प्यार किया था?

ऐसे मैं मन बहलाता हूँ

सोचा करता बैठ अकेले,
गत जीवन के सुख-दुख झेले,
दंशनकारी सुधियों से मैं उर के छाले सलाता हूँ!
ऐसे मैं मन बहलाता हूँ!

नहीं खोजने जाता मरहम,
होकर अपने प्रति अति निर्मम,
उर के घावों को आँसू के खारे जल से नहलाता हूँ!
ऐसे मैं मन बहलाता हूँ!

आह निकल मुख से जाती है,
मानव की ही तो छाती है,
लाज नहीं मुझको देवों में यदि मैं दुर्बल कहलाता हूँ!
ऐसे मैं मन बहलाता हूँ!

मेघदूत के प्रति

महाकवि कालिदास के मेघदूत से साहित्यानुरागी संसार भलिभांति परिचित है, उसे पढ़ कर जो भावनाएँ ह्रदय में जाग्रत होती हैं, उन्हें ही मैंने निम्नलिखित कविता में पद्यबध्द किया है भक्त गंगा की धारा में खड़ा होता है और उसीके जल से अपनी अंजलि भरकर गंगा को समर्पित कर देता है इस अंजलि में उसका क्या रहता है, सिवा उसकी श्रध्दा के? मैंने भी महाकवि की मंदाक्रांता की मंद गति से प्रवाहित होने वाली इस कविता की मंदाकिनी के बीच खड़े हो कर, इसी में कुछ अंजलि उठाकर इसीको अर्पित किया है इसमें भी मेरे अपनेपन का भाग केवल मेरी श्रध्दा ही है -- ***हरिवंशराय बच्चन***

"मेघ" जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

हो धरणि चाहे शरद की
चाँदनी में स्नान करती,
वायु ऋतु हेमंत की चाहे
गगन में हो विचरती,

हो शिशिर चाहे गिराता
पीत-जर्जर पत्र तरू के,
कोकिला चाहे वनों में,
हो वसंती राग भरती,

ग्रीष्म का मार्तण्ड चाहे,
हो तपाता भूमि-तल को,
दिन प्रथम आषाढ़ का में
'मेघ-चर' द्वारा बुलाता

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

भूल जाता अस्थि-मज्जा-
मांसयुक्त शरीर हूँ मैं,
भासता बस-धूम्र संयुत
ज्योति-सलिल-समीर हूँ मैं,

उठ रहा हूँ उच्च भवनों के,
शिखर से और ऊपर,

देखता संसार नीचे
इंद्र का वर वीर हूँ मैं,

मंद गति से जा रहा हूँ
पा पवन अनुकूल अपने
संग है वक-पंक्ति, चातक-
दल मधुर स्वर गीत गाता

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

झोपड़ी, ग्रह, भवन भारी,
महल औ' प्रासाद सुंदर,
कलश, गुंबद, स्तंभ, उन्नत
धरहरे, मीनार ढ़ढ़तर,

दुर्ग, देवल, पथ सुविस्तत,
और क्रीड़ोद्यान-सारे,
मंत्रिता कवि-लेखनी के
स्पर्श से होते अगोचर

और सहसा रामगिरि पर्वत
उठाता शीशा अपना,
गोद जिसकी स्निग्ध छाया
-वान कानन लहलहाता!

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

देखता इस शैल के ही
अंक में बहु पूज्य पुष्कर,
पुण्य जिनको किया था
जनक-तनया ने नहाकर

संग जब श्री राम के वे,
थी यहाँ पे वास करती,
देखता अंकित चरण उनके
अनेक अचल-शिला पर,

जान ये पद-चिन्ह वंदित
विश्व से होते रहे हैं,
देख इनको शीश में भी
भक्ति-श्रध्दा से नवाता

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

देखता गिरि की शरण में
एक सर के रम्य तट पर
एक लघु आश्रम घिरा बन
तरु-लताओं से सघनतर,

इस जगह कर्तव्य से च्युत
यक्ष को पाता अकेला,
निज प्रिया के ध्यान में जो
अश्रुमय उच्छवास भर-भर,

क्षीणतन हो, दीनमन हो
और महिमाहीन होकर

वर्ष भर कांता-विरह के
शाप के दुर्दिन बिताता

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

था दिया अभिशाप अलका-
ध्यक्ष ने जिस यक्षवर को,
वर्ष भर का दंड सहकर
वह गया कबका स्वघर को,

प्रयेसी को एक क्षण उर से
लगा सब कष्ट भूला

किन्तु शापित यक्ष
महाकवि, जन्म-भरा को!

रामगिरि पर चिर विधुर हो
युग-युगांतर से पड़ा है,
मिल ना पाएगा प्रलय तक
हाय, उसका शाप-त्राता!

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

देख मुझको प्राणप्यारी
दामिनी को अंक में भर
घूमते उन्मुकत नभ में
वायु के म्रदु-मंद रथ पर,

अट्टहास-विलास से मुख-
रित बनाते शून्य को भी
जन सुखी भी क्षुब्ध होते
भाग्य शुभ मेरा सिहाकर;

प्रणयिनी भुज-पाश से जो
है रहा चिरकाल वंचित,
यक्ष मुझको देख कैसे
फिर न दुख में डूब जाता?

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

देखता जब यक्ष मुझको
शैल-श्रृंगों पर विचरता,
एकटक हो सोचता कुछ
लोचनों में नीर भरता,

यक्षिणी को निज कुशल-
संवाद मुझसे भेजने की
कामना से वह मुझे उठबार-
बार प्रणाम करता

कनक विलय-विहीन कर से
फिर कुटज के फूल चुनकर
प्रीति से स्वागत-वचन कह
भेंट मेरे प्रति चढ़ाता

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

पुष्करावर्तक घनों के
वंश का मुझको बताकर,
कामरूप सुनाम दे, कह
मेघपति का मान्य अनुचर

कंठ कातर यक्ष मुझसे
प्रार्थना इस भांति करता-

'जा प्रिया के पास ले
संदेश मेरा,बंधु जलधर!

वास करती वह विरहिणी
धनद की अलकापुरी में,
शंभु शिर-शोभित कलाधर
ज्योतिमय जिसको बनाता'

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

यक्ष पुनः प्रयाण के अनु-
रूप कहता मार्ग सुखकर,
फिर बताता किस जगह पर,
किस तरह का है नगर, घर,

किस दशा, किस रूप में है
प्रियतमा उसकी सलोनी,
किस तरह सूनी बिताती
रात्रि, कैसे दीर्ध वासर,

क्या कहूँगा,क्या करूँगा,
मैं पहुँचकर पास उसके;
किन्तु उत्तर के लिए कुछ
शब्द जिह्वा पर ना आता

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

मौन पाकर यक्ष मुझको
सोचकर यह धैर्य धरता,
सत्पुरुष की रीति है यह
मौन रहकर कार्य करता,

देखकर उद्यत मुझे
प्रस्थान के हित,

कर उठाकर
वह मुझे आशीष देता-

'इष्ट देशों में विचरता,
हे जलद, श्री व्रिध्दि कर तू
संग वर्षा-दामिनी के,
हो न तुझको विरह दुख जो
आज मैं विधिवश उठाता!'

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता,
मैं स्वयं बन मेघ जाता!